

आदिवासियों की उम्मीद थे ब्रह्मदेव शर्मा

बाबा मायाराम

बी. डी. शर्मा (ब्रह्मदेव शर्मा) जी नहीं रहे, यह खबर मुझे रांची में मिली। उनका निधन 6 दिसंबर को हो गया। उस समय मैं झारखंड के मित्र सुनील मिंज से वहां तेज गति से होने वाले औद्योगिकीकरण की कहानियां सुन रहा था। जल, जंगल, जमीन जैसे संसाधन किस तरह से आदिवासियों से छीने जा रहे हैं, यह झारखंड में देखा जा सकता है। यही हाल छत्तीसगढ़, ओडिशा और देश के अन्य इलाकों में हो रहा है। मेरे मानस पटल पर डाक्टर साहब की कई छवियां उभर आईं।

वर्ष 1992 के आसपास मावलीभाटा का संघर्ष और वर्ष 2001 का नगरनार का संघर्ष। दोनों जगह स्टील प्लांट लगना था। दोनों ही बस्तर इलाके में हैं। मावलीभाटा के समय अविभाजित मध्यप्रदेश में भाजपा की और वर्ष 2001 में अलग छत्तीसगढ़ राज्य में कांग्रेस की सरकार थी। दोनों का डाक्टर साहब और उनके संगठन भारत जन आंदोलन व अन्य संगठनों ने विरोध किया था। लेकिन मावलीभाटा के समय सरकार समर्थित लोगों ने डाक्टर साहब को निर्वस्त्र कर जगदलपुर में घुमाया गया। सरेआम वहां के माडिया चौक पर चप्पलों की माला पहनाई गई और कालिख पोती गई। यह सब घंटों चलता रहा लेकिन प्रशासन व पुलिस मूकदर्शक बना रहा। लेकिन डाक्टर साहब ने इसका बुरा नहीं माना। और कहा मैं किसी के खिलाफ रिपोर्ट नहीं लिखाऊंगा। नासमझ लोग हैं, कभी समझेंगे। इसका विरोध इतना बढ़ा कि लोगों ने स्टील प्लांट की आधारशिला को उखाड़कर फेंक दिया।

बाद में बुरंगपाल के नंगापाड़ा में लोगों ने उनके लिए एक कुटिया भी बना दी, जहां रहकर वे लेखन का काम करते रहे। चिमनी की रोशनी में। यह कुटिया अब भी संघर्ष की गवाह है।

नगरनार में जब एन. एम.डी.सी. के खिलाफ भी डाक्टर साहब के नेतृत्व में आंदोलन खड़ा हो गया। इसमें कुछ और संगठन भी जुड़े हुए थे। ग्रामसभा ने अनुमति नहीं दी और अपनी असहमति दर्ज की। लेकिन तत्कालीन कलेक्टर, जो कि एक महिला थी, ने झूठे कागज तैयार करवाए और ग्रामसभाओं की सहमति दर्ज करवाई। विरोध ज्यादा होने पर आदिवासियों पर फायरिंग की गई। 4-5 लोगों के गोलियों लगी।

ऐसी कई और घटनाएं हैं, जब डाक्टर साहब आदिवासियों के संघर्ष में न सिर्फ कलम से बल्कि उनके साथ सड़क पर भी उतरे। मैं इस समय रायपुर में था और डाक्टर साहब से मिलता रहता था। मेरे दो मित्र मनोज कोमरे और किसुन साहू उनके साथ ही काम करते थे। मनोज, खुद आदिवासी था और डाक्टर साहब से नगरी सिंहावा में आंदोलन जुड़ गया था। वह सिंहावा के डोंगरीपारा के संघर्ष में शामिल हुआ था। डोंगरीपारा गांव, सिंहावा आश्रित पंचायत का गांव था, जहां की गिट्टी खदान और तालाब की मछली का ठेका गांव की बिना सहमति के बाहरी लोगों को दे दिया था। यह बात 1995-96 के आसपास की है। इसका भारत जन आंदोलन ने कड़ा विरोध किया और लोगों ने लड़ाई लड़ी और जीती। इसके बाद जब पेसा एक्ट लागू हो गया तो यह गांव पंचायत से अलग भी हो गया।

बाद में जब मैं किसुन के साथ पहाड़ी पर बसे डोंगरीपारा गांव में गया तो वहां के लोगों की एकता देखकर बहुत प्रभावित हुआ। इस गांव में कोई भी बाहरी आदमी आता है, उसे रजिस्टर में अपना नाम पता लिखना पड़ता है। मावानाटे मावा राज।

हमारे गांव में हमारा राज। 1996 में जब पंचायत उपबन्ध में पेसा (PESA), अनुसूचित क्षेत्रों के विस्तार का अधिनियम बना तो दिल्ली में हजारों लोगों ने गांव गणराज्य का संकल्प लिया गया। रायपुर और बस्तर के गांवों में इसके शिलालेख भी लगाए गए। इस कानून को बनवाने में डाक्टर साहब की प्रमुख भूमिका थी।

इस इलाके में माडमसिल्ली बांध और गंगरैल बांध के विस्थापितों की लड़ाई भी लंबी चली। इसमें एक मुद्दा यह भी था कि बांध सिंचाई के लिए बनाए गए हैं, लेकिन पानी भिलाई स्टील प्लांट को दिया जा रहा है। किसानों के खेत प्यासे के प्यासे ही रह गए हैं। इसी इलाके में चनागांव के लोगों ने वनविभाग द्वारा जंगल काटने का विरोध किया और जंगल भी बचाया।

किसुन, हिरमी और रावन में जमीन के उचित मुआवजा की लड़ाई से डाक्टर साहब के संपर्क में आया तो उनका ही होकर रह गया। किसुन बताता है सीमेंट फैक्ट्रियां सस्ते दामों की जमीनें ले लेती थीं। हिरमी में लार्सन एंड टूबो व रावन में ग्रासिम ने किसानों ने जमीनें ली थीं। जब वहां का आंदोलन खड़ा हुआ तो उन्होंने नौजवानों से कहा तुम नौकरी के पीछे भागते हो, यहां तुम्हारे बाप- दादाओं की जमीन छीनी जा रही है।

इन उदयोगों में तुम्हें काम भी नहीं मिलने वाला है। जमीन के लिए लड़ना पड़ेगा। जब आंदोलन तेज हुआ तो लड़ाई छिड़ी और जीती गई। हालांकि ढाई सौ लोगों को जेल जाना पड़ा। पर इसका फौरी असर हुआ कि उद्योग लगाने वालों को किसानों को मुआवजा देना पड़ा। डाक्टर साहब कहते थे- धरती भगवान ने बनाई , हम भगवान के बेटे, सरकार बीच में कहां से आई।

डाक्टर साहब ने आदिवासियों के लिए कई कानून, योजनाएं और नीतियां बनाने में भी योगदान दिया। लेकिन जमीन पर उसे लागू करने के लिए जनता को भी जागरूक, संगठित करने का काम किया।

किसानों की समस्याओं पर भी उनकी बातें हमेशा याद आती हैं। एक बात कहते थे कि किसानों से चक्रवर्द्धि ब्याज लेना बंद करना चाहिए। उन्हें अकुशल श्रमिक की श्रेणी में नहीं, कुशल मानना चाहिए। उनका कई विषयों पर गहन अध्ययन और चिंतन था।

रायपुर और चनागांव में भारत जन आंदोलन का आफिस भी जनता के चंदे के पैसे से चलता था। रायपुर का आफिस खरीदने के लिए चंदे से पैसा जुटाया गया था। कार्यकर्ताओं के आने जाने के खर्च और भोजन आदि की व्यवस्था भी लोगों के चंदे से हुआ करती थी। इसके लिए गांवों से हर घर से एक गिलास चावल और एक रूपया चंदा लिया जाता था। डाक्टर साहब मानते थे जिनकी लड़ाई है, उन्हें ही इसका खर्चा उठाना चाहिए। अगर बाहर से पैसा लेंगे तो उनका लड़ाई में दखल होगा और वह कमजोर पड़ जाएगी। कई सालों तक किसुन और मनोज जैसे दर्जनों कार्यकर्ता बिना मानदेय के, सिर्फ भोजन और आने जाने खर्च से काम करते थे। जहां जाते थे वहां के लोग ही उनकी व्यवस्था करते थे। एनजीओ के इस जमाने में यह बहुत उच्च आदर्श था। इसके कारण कार्यकर्ता भी तैयार हुए।

वे कलेक्टर से लेकर सचिव के पदों पर राज्य और केन्द्र सरकारों में रहे। हर जगह लोगों के लिए काम किया। बस्तर में कलेक्टर रहे और बाद में भी बस्तर ही उनकी कर्मस्थली बना रहा। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जाति आयुक्त जैसे संविधानिक पद पर भी रहे। लेकिन उन्होंने अपने कार्यकर्ताओं व आदिवासियों के

साथ बराबरी का व्यवहार किया। वे बिरले ही नौकरशाह थे, जिन्हें इस बात का बिल्कुल गुमान नहीं था।

जब मैं रायपुर था तब उनसे लगातार बातचीत होती रहती थी। उनके पास बस्तर और नगरी सिंहावा के दूरदराज गांव के लोग मिलने आते थे। रायपुर के दफ्तर में आदिवासियों का डेरा रहता था। भीड़ भरे शहर में शंकर नगर की छोटी गलियों से झोला पकड़े आदिवासियों को देखना सुखद लगता था, लेकिन जैसे ही उनकी दुखभरी कहानियां सुनता वह सुखद एहसास गहरी उदासी में बदल जाता था।

खादी की बनियान और धोती पहने डाक्टर साहब दरी पर बैठे उस छोटे कमरे में लिखते रहते थे। फोन पर सीधी सच्ची बात करते रहते थे। किसुन और मनोज जैसे युवा साथी उनके संग जुड़ते रहते थे। अब वे नहीं हैं। मेरी मेज पर उनकी बहुत सी किताबें हैं। उनके विचारों की विरासत है। अगर हम इस लड़ाई को कुछ आगे ले पाएं तो यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।